प्रथम वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सभ्यग्ज्ञान प्रवेशिका) अभ्यास ५

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड

सौजन्य : अ.सौ. लेखाबेन धनपतिभाई मोमाया - कच्छ बारोई - हाल जलगाँव

सूत्र - विधि और रहस्य

सामान्य जिन चैत्यवंदन

तुज मुरति ने निरखवा, मुज नयना तलसे;

तुज गुण गण ने बोलवा, रसना मुज हरखे...१

काया अति आनंद मुज, तुम युगपद स्पर्शे;

तो सेवक तार्या विन, कहो केम हवे सरशे...२

अेम जाणी ने साहेबा, नेक नजर मोहे जोय;

ज्ञानविमल प्रभु नजर थी, ते शुं जे नवी थाय....३

जंकिंचि (तीर्थ वंदन)

जं किंचि नामतित्थं सग्गे पायालि तिरिय लोएमि / माणुसे लोएमि
जाइं जिणबिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि....१

-: शब्दार्थ :-

जं किंचि : जो कोई
नामतित्थं : नाम रुप तीर्थ
सग्गे : स्वर्ग में
पायालि : पाताल में
तिरियलोएमि : तिर्च्छालोक में
माणुसेलोएमि : मनुष्य लोक में
जाइं : जितने
जिण बिंबाई : जिन बिंब, जिनेश्वरों की प्रतिमाऐं
ताइं : उन
सव्वाइं : सभी को
वंदामि : मैं वंदन करता हूँ

अर्थ : स्वर्ग में, पाताल में और तिर्च्छा - मनुष्य लोक में जो कोई नामरुप तीर्थ, जो कोई जिनेश्वर देव के बिंब, प्रतिमाअें, मूर्तियां हो उन सब को मैं वंदन करता हूँ.....१

इस सूत्र से तीन लोक में रहे सभी तीर्थों को और सभी जिन प्रतिमाओं को वंदन किया जाता है ।

नमोत्थुणं - शक्रस्तव सूत्र

नमोत्थुणं, अरिहंताणं, भगवंताणं. १
आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं. २
पुरिसत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर पुंडरीआणं,
पुरिसवरगंधहत्थिणं. ३
लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं,
लोगपईवाणं, लोगपज्जोअगराणं. ४
अभयदयाणं, चख्खुदयाणं, मग्गदयाणं
सरणदयाणं, बोहिदयाणं. ५
धम्मदयाणं, दम्मदेसयाणं, धम्मनायगाणं,
धम्मसारहीणं, धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं. ६
अप्पडिहय वर नाणं, दंसणधराणं, वियट्टछउमाणं ७
जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं,
बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं. ८
सव्वनूणं, सव्वदरिसीणं, सिवमयलमरुअमणंत,
मकखयमव्वाबाह, मपुणरावित्ति सिद्धिगइ
नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जिअभयाणं ९
जे अ अइआ सिध्दा, जे अ भविस्संतिणागअे काले;
संपइ य वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि. १०

-: शब्दार्थ :-

नमोत्थुणं : नमस्कार हो
अरिहंताणं : अरिहंतो को
भगवंताणं : भगवंतो को
आईगराणं : आदि करनेवालो को
तित्थयराणं : तीर्थंकरों को
सयंसंबुद्धाणं : स्वयं ही बोध पाये हुओं को
पुरिसुत्तमाणं : पुरुषों में जो उत्तम हैं उनको
पुरिससीहाणं : पुरुषों में जो सिंह समान हैं उनको
पुरिसवर : पुरुषों में जो श्रेष्ठ उत्तम
पुंडरीआणं : पुंडरीक कमल समान हैं उनको
गंधहत्थीणं : गंधहस्ति समान को
लोगुत्तमाणं : लोक में उत्तम हैं उनको
लोगनाहाणं : लोक के नाथों को स्वामीओं को
लोगहियाणं : लोक का हित करने वाले को
लोगपइवाणं : लोक में प्रकाश करनेवाले महादीपकों को
लोगपज्जोअगराणं : लोक में प्रद्योत करने वालों को
अभयदयाणं : सभी जीवों को अभय देने वालों को
चक्खुदयाणं : ज्ञानरुपी नेत्र देने वालों को
मग्गदयाणं : मार्ग दिखानेवालों को
सरणदयाणं : आश्रय देनेवालों को
बोहिदयाणं : बोधिबीज समकित देने वालों को
धम्मदयाणं : धर्म देने वालों को
धम्मदेसयाणं : धर्म के उपदेश को
धम्मनायगाणं : धर्म के स्वामीओं को
धम्मसारहीणं : धर्म के सारथीओं को
धम्मवर : धर्म राज्य के श्रेष्ठ
चाउरंत : चारगति का अंत करनेवाले
चक्कवट्टीणं : चक्रवर्तीओ को
अप्पडिहय : किसी से भी हनन न हो ऐसे
वरनाण-दंसण : उत्तम केवलज्ञान और केवल दर्शन
धराणं : धारण करने वालों को
वियट्टछउमाणं : जिनका छदमस्थपना चला गया है उनको
जिणाणं : रागांदि दोषों को जीतने वालों को
जावयाणं : जीतानेवालों को
तिन्नाणं : संसार समुद्र तिर गये हैं उनको
तारयाणं : तिराने वालों को
बुध्दाणं : तत्व जानने वालों को
बोहियाणं : दूसरों को बोध देनेवालों को
मुत्ताणं : कर्म से मुक्त हुये हैं उनको
मोअगाणं : कर्म बंधन से मुक्त कराने वालों को
सव्वनूणं : सर्व जानने वालों को
सव्वदरिसीणं : सर्व देख सकने वालों को
सिवं : उपद्रवों से रहित
अयलं : स्थिर
अरुअं : व्याधि और वेदना रहित
अनंत : अंत रहित
अख्खयं : जिसका कदापि क्षय होता नहीं (अक्षय)
अव्वाबाहं : कर्मजन्य पीडाओं से रहित
अपुनरावित्ति : जहाँ जाने के पश्चात वापस आने का नहीं रहना ऐसा
सिद्धिगई : सिद्ध हुऐ जीवों की जहाँ गति होती है वो सिध्द गति
नामधेयं : नामवाले
ठाणं : स्थान को
संपताणं : प्राप्त करने वालों को
नमो : नमस्कार हो
जिणाणं : जिनेश्वरों को
जिअभयाणं : सात प्रकार के भय (डर) को जीतनेवालों को
जे : जो
अ : और

अइआ सिद्धा : भूतकाल में जो सिध्द हुए हैं
भविस्संति : सिद्ध होंगे
अणागअे काले : भविष्यकाल में
संपई : वर्तमान काल में
अ : और
वट्टमाणा : वर्तमान - विद्यामान हैं उन
सव्वे : सभी को
तिविहेण : मन वचन और काया इन तीनों प्रकार से
वंदामि : मैं वंदन करता हूँ

अर्थ : नमस्कार हो, अरिहंत भगवंतो को १...जो श्रुतधर्म की आदि करने वाले, चतुर्विध संघरुपी तीर्थ की स्थापना करनेवाले तीर्थंकरों को, और स्वयं ही बोध पाने वाले स्वयंज्ञानीओ को २... जो पुरुषों में परोपकारादि गुणों द्वारा उत्तम हैं उन्हें, शौर्यादि गुणों द्वारा सिंह समान हैं उन्हें, निर्लेपता में उत्तम पुंडरिक कमल समान हैं उन्हें, और स्वचक्र-परचक्रादि सात प्रकार की इतिओ को दूर करने में गंधहस्ति समान है उन्हें....३

जो भव्यप्राणीरुप लोक में उत्तम हैं उन्हें, लोकनाथो को स्वामीओ को, लोक का हित-कल्याण करने वालों को, लोक में प्रकाश करने वाले महादीपको को, लोक में प्रद्योत अतिशय प्रकाश करनेवालों को...४

सर्व जीवों को अभय देनेवालों को, श्रध्दारुपी नेत्रों का दान करनेवालों को, मोक्षमार्ग दिखानेवालों को, रागद्वेष से पराभूत हुए प्राणीओं को शरण आश्रय देने वालों को, मोक्ष -वृक्ष के मूलरुप बोधिबीज सम्यकत्व का लाभ देने वालों को...५

विरतिरुप चारित्र धर्म को देनेवालों को, पैत्तीस गुणों से युक्त वाणी द्वारा धर्म देशना देनेवालों को, धर्म के सच्चे नायक-स्वामीओको धर्मरुपी रथ को चलाने में निपुण सारथीओं को, चार गति का अंत करने वाले श्रेष्ठ धर्मचक्र को धारण करने वाले चक्रवर्तीओं को....६

किसी से भी हनन न हो ऐसे उत्तम, केवलज्ञान और केवलदर्शन धारण करने वालो को, जिनका छद्मस्थपना, धातीकर्म रुपी आवरण चला गया है उन्हें....७

जिन्होंने राग और द्वेष पर विजय पाई है ऐसे विजेताओं को तथा उपदेश द्वारा दूसरों को जिताने वालों को, जो सम्यग्दर्शनादि जहाज द्वारा संसार समुद्र तैर गये हैं उनको तथा जो अन्य को संसार समुद्र से तिराते हैं उनको, जिनको ज्ञान से जीवजीवादि तत्व का बोध है उन्हें तथा दूसरों को बोध देते हैं उन्हें, जो सर्व कर्म के बंधनो से मुक्त हो गये हैं उन्हें तथा दूसरों को मुक्ति दिलाते हैं उन्हें....८

सब कुछ जानने वालोंको तथा सब कुछ देख सकने वालों को, उपद्रवों से रहित, स्थिर, व्याधि और वेदना से रहित, अंत रहित, कदापि क्षय नहीं पाने वाले, कर्मजन्य पीडाओं से रहित, जहाँ जाने के पश्चात संसार में वापस फिरना नहीं होता ऐसा तथा सिध्द हुए जीवों की जहाँ गति होती है वह सिद्धगति नाम वाले स्थान को प्राप्त कर लिया है, तथा जिन्होंने सात प्रकार के भय को जीता है, उन जिनों को, जिनेश्वरों को नमस्कार हो....९

जो भूतकाल में सिध्द हुए हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होने वाले हैं और जो वर्तमान में अरिहंतरुप विद्यमान है उन सभी को मन, वचन, काया के द्वारा इन तीन प्रकार से मैं वंदन करता हूँ....१०

इस सूत्र से अरिहंत हो कर सिद्धगति को पाये हुए सर्व जिनेश्वरों को वंदन किया गया है, तथा जो हो गये हैं जो होने वाले हैं तथा विद्यमान है इस तरह तीन काल के अरिहंतो को वंदन किया जाता है । शक्र (इन्द्र) इस सूत्र से अरिहंतो की स्तवना करते हैं, इसलिये इस सूत्र को ''शक्रस्तव'' भी कहते हैं ।

श्रावक किसे कहें ?

(श्रावक के २१ गुण)

समवशरण में विराजमान देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा जब जब मोक्षमार्ग की बात करते है, तब तब सार रुप दो प्रकारके धर्म की प्ररुपना करते है । हाँ इसीलिये तो अरिहंत की माता पाँचवे स्वप्न में पुष्पों की दो मालाएँ देखती है । यह धर्म दो प्रकारका है ।

सर्वविरति और देशविरति

सर्व विरति याने साधु जीवन । यह जीवन प्राप्त करनेका सौभाग्य सबके ललाट में नहीं लिखा होता । पर यदि पुरुषार्थ किया तो देशाविरति अर्थात श्रावक बनने का सद्भाग्य सब जीव प्राप्त कर सकते है । किसीने सच ही कहा है -

Every One can not become a great man but every one can become a gentle man.

अर्थात : प्रत्येक व्यक्ति महान नहीं बन सकता पर प्रत्येक व्यक्ति सदाचारी जरुर बन सकता है ।

अपने जीवन को सदाचार परिमल से सुवासित करने के लिये ही शास्त्रकारों ने श्रावक के जीवन बाग को सद्गुणों के पुष्पों से शोभायमान बनाने की बात कही है ।

हम श्रावक जीवन के गुणों की विचारणा कर रहे है । आज हमें श्रावक के चौथे गुण का विचार करना है ।

४. लोकप्रियता

इहपरलोय विरुध्द, न सेवअे दाण विणय सीलड्ढो ।
लो अप्पिओ जणाणं जणेई धम्ममि बहुमाणं ।।

इहलोक और परलोक विरुद्ध आचरण न हो । दान - विनय - शील युक्त हो वह लोकप्रिय होता है इससे अन्य मनुष्यों को भी धर्म के प्रति बहुमान उत्पन्न कराता है ।

श्रावक का चौथा गुण कहता है - श्रावक सदा लोकप्रिय हो । अजैनों के बस्ती में एक ही जैन का घर हो फिर भी सब के जुबान पर उसी का नाम रहता है । श्रावक को यह लोकप्रियता ऐसे ही प्राप्त नहीं होती, उसके पीछे उसके गुण होते है । जब दान,विनय और शील से युक्त होता है, तब उसे स्वयमेव लोकप्रियता प्राप्त होती है । सच्ची लोकप्रियता प्रचार से नहीं आचार से मिलती है ।

दुर्गुणों की बादबाकी और सद्गुणों की सुवास मनुष्य को उच्चस्थानपर विराजित करती है । जीवन में सदगुणोंकी सुवास हो पर साथ साथ दुर्गुण या दुर्व्यसन हो तो मानवी सच्ची लोकप्रियता पा नहीं सकता । सबेरे परमात्म,भक्ति और दान देनेवाला शाम को क्लबों में दारु के नशे में, जुआ खेलता हुआ दिखाई दे अथवा लाखों का दान देकर चाहे वैसा बोलनेवाला हो, बडों का अपमान करनेवाला हो, तो वह न तो लोकप्रिय बन सकता है न तो सद्धर्म का आचरण कर सकता है । ऐसे जीव धर्म करने योग्य या धर्म लायक नहीं माने जाते । परंतु ऐसे व्यक्तियों के नामसे धर्म की निंदा होती है । धर्मी लोग भी निंदनीय हो जाते है

श्रावक के गुणों को प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाला पहले तो परलोक विरुद्ध आचरण न करें । उसका जीवन सब तरह के व्यसनों से मुक्त हो । जब तक जीवन शुद्ध पवित्र नहीं बनता तब तक उसमें धर्म की विशिष्ट आराधना संभवित नहीं । भूमि शुध्द हो तो उस पर चित्रकार सुंदर चित्र आलेखित कर सकता है । पात्र शुध्द होता है तभी उसमें दूध टिक सकता है । उसी तरह लोकप्रियता आदि महान गुणों को प्राप्त करने जीवन को व्यसनमुक्त बनाना ही पडेगा । परलोक जिसके नजर के सामने हो, खुद को दुर्गति से बचाना है, तो व्यसन त्याग अनिवार्य बन जाता है ।

धुतं च मांस सुरा च विस्या । पापर्धि चोरी परदार सेवा ।।
अेतानि सप्तानि व्यसनानी लोके ।घोराति घोरं नरकं नयन्ति ।।

१) जुआ २) मांस ३) मदिरा ४) वेश्यागमन ५)

शिकार ६) चोरी ७) परस्त्रीगमन ये सात व्यसन जीव को घोराति घोर नरकमें ले जाते है ।

परलोक में दुर्गति तो और दूर का फल है पर इसी भव में भी उसके भयंकर परिणाम जीव को भोगने पडते है ।

द्वारिका के विनाश के मूलमें व्यसन ही थे न ?

पांडवों को वनवास देनेवाले व्यसन ही थे न ?

सुवर्ण की लंका के स्वामी रावण को नरक में ले जाने वाला कौन था ?

नळराजा को रास्तेपर लानेवाला कौन था ?

ये तो सब भूतकाल की बातें है । पर आज यदि तुम तुम्हारे आजुबाजु नजर करोगे तो आज के संसार के समस्त दुःखों का कारण येही व्यसन दृष्टिगोचर होते है ।

आज जुअे में खलास होने वाली कई खानदान दिखाई देते हैं ।

आज बहुत सारे कुलीन परिवारों में मांसाहार के कारण दुर्बुद्धिसे अनेक अनर्थों का सर्जन हुआ है ।

आज शराब ने बहुत सारे घरों में छोटे बडों के सुख में आग लगा दी है । अनेक परिवार निराधार अनाथ हुए है, बहुत सारे जीव विविध रोगों के शिकार बने है ।

"Wine has drowned more men than the sea"

अर्थात आज तक समुद्र से अधिक शराब में मानवी डूबे है ।

वेश्यागमन के व्यसन से जीव दुराचारी, निर्माल्य, वीर्यहीन बने है । विविध रोगोंके भोग हुए है । तन और धन से जीव खलास हुए है ।

शिकार का व्यसन आज कम दिखाई देता है, परंतु खुद के सुख के लिये, विविध मुलायमादि वस्तुओं के लिये यह जीव बेधडक जीवों को मारते जाता है । स्वाद के लिये..विदेशी चलण प्राप्त करने के लिये, कत्तलखाने के उपर कत्तलखाने खोलते जा रहा है । निर्दोष जीवों के, मूक जीवोंके निश्वास मिलाकर कौन सुखी हो सकेगा ?

चोरी का दूषण आज बढते जा रहा है । प्रामाणिकता घटती जा रही है । आज के जमाने में अपटुडेट चोर बढते जा रहे है । जहाँ से मिले वहाँसे पैसा खाने की वृत्ति बढती जा रही है । अच्छे अच्छे लोगों के हाथ इस पाप से लिप्त है । यह व्यसन पैसोंकी आसक्ति, बढाता है और एक पाप अनेक पापों को जन्म देता है ।

परस्त्रीगमन के पापसे बहुत सारे परिवार टूटे हैं । सुखी परिवार बिखर गये है । जिसके कटु परिणामों से बच्चे दुराचारी बनते है ।

हे जीव ! अनेकानेक भवों से आत्मा अज्ञानता से ऐसे अनेक व्यसनों में फँसा है । व्यसन में फँसकर प्रथम तो उसने जिनाज्ञा का भंग किया है । फिर व्यसन के कारण दुराचारियोंका संग मिलता है । अतः एक व्यसन अनेक व्यसनों को खिंच लाता है । व्यसनी व्यक्तियों का कोई विश्वास नहीं करता, उसकी समाज में कोई किंमत नहीं होती । मुँह पर कदाचित कोई कुछ न बोले परंतु समाज में उसकी निंदा होती है ।

ऐसा जीव लोकप्रियता को किस तरह पा सकता है ?

बिना रसकस की, नमकीन जमीन खेत नहीं बन सकती, वह तो रण बन जाती है । उसी तरह गुणहीन एवं व्यसनवाला जीवन नंदनवन नहीं बनता, पर जंगल बन जाता है । अपने जीवन को क्या बनाना है ? यदि नंदनवन जैसा जीवन बनाना हो तो जीवन को सत्वर व्यसनों से मुक्त बनानाही पडेगा । जैसे जैसे व्यसन घटते जायेंगे, वैसे वैसे आत्मा में शांति की अनुभूति होती जायेगी । अज्ञानदशा से ऐसा लगता है की व्यसनों में शांति है पर व्यसनों में जीवन की बरबादी है ।

व्यसन व्यक्ति के ज्ञानतंतुओं को निर्बल बनाते है । जीव विचार करने की शक्ति गँवा देते है । हिताहितका विचार नहीं कर सकता । ऐसा व्यसनों का गुलाम कदाचित धर्म करे पर उसका धर्म जीवन में कभी टिक नहीं सकता । ऐसे जीवन में दान, विनय, शील कहाँसे आयेंगे ? व्यसन अच्छे खासे मानवी की कैसी अवदशा

कर देते है, इसकी सुंदर बात यहाँपर गुरुशिष्य के संवाद से बतायी है ....

विवेक नामक पर्वतपर चढते हुए शिष्य गुरुको पूछता है ''हे गुरुजी । इस मंदिर में जो दीन और नग्न मनुष्य दिखाई दे रहा है वह कौन है ?'' शिष्य की बात सुनकर गुरु कहते है - ''यह तो पलायन करने की इच्छा रखनेवाला, दिशाओं की और देखनेवाला, क्षुधा से पीडित एवं पुरुषों से घिरा हुआ यह लक्ष्मी के भंडार जैसे कुबेर का पुत्र है उसका गौण नाम कपोत है और मुख्य नाम धनेश्वर है । जुअे के व्यसनवाले उसने पिता का धन नष्ट किया है । धन भी खलास होने पर जुअे के लिये वह चोरी करने लगा तब राजा ने उसकी कदर्थना की पर मान्यवर का पुत्र होने से उसे जीवसे मारा नहीं, आज रात्री में ये जुने पुराणे कपडे भी जुअे में हार गया है । अतः व्यसन से खेद पाकर उसने अपना मस्तक भी दाँव पर लगा दिया । उसका मस्तक भी लेने की इच्छावाले दुष्ट एवं धुर्त जुआरीयों ने उसे जीत लिया है । उसके ऐसे हाल किये है , वह भाग जानेकी इच्छा रखता है पर भाग भी नहीं सकता ।

यह बात जानकर शिष्य कहता है - ''क्या यह जुअे के विकार को नहीं जानता ? जुआ तो धनरुपी काष्ठ को जलाने में अग्नि समान है । मृत्यु के मित्र समान है और गुणों को नष्ट करने में रोग समान है ।''

सच ! महा मोह को वश हुए अधम मानवी रसपूर्वक जुअे में रत रहते है । उसके अनर्थ जानकर भी उसका त्याग नहीं कर पाते । अतः सतत निर्धनता-क्लेश और अशांती भोगते है ।

गुरु शिष्य की जोडी व्यसन के गुलामी के कारण होती मनुष्य की दुर्दशा देखते देखते आगे बढते है । वहाँ वनमे और एक विचित्र दृष्य देखने को मिलता है । वह देखते ही शिष्य आश्चर्यचकित होता है । कैसे कैसे प्रकारके जीव इस पृथ्वीतलपर कैसे कैसे कार्य करनेमें लगे है । इन जीवों को ऐसे सब कार्य करने में आनंद आता होगा ? क्या इन जीवों को उनके कार्योंके कटु विपाक की समझ न होगी ? ऐसा विचार करते करते कौतुक वश अपने साथ रहे हुए अपने गुरु को पूछने लगे - ''गुरुजी ! यह उठाये हुए शस्त्रवाला स्वयं दुःखी - अन्य प्राणियों को दुःख देनेवाला भूख से व्याकुल होनेवाला... तृष्णासे शोषित मुखवाला ऐसा यह घोडेस्वार मद्यान्ह काल में भी सियार के पीछे क्यों दौडता है ?''

जवाब देते हुए गुरुजी कहते है ''ललितपुर का यह लालन राजा है । वह सदा शिकार में तल्लीन होकर वन में ही रहता है । मंत्री और मित्रों ने समझाया पर वह शिकार के व्यसन से हटता नहीं है, राज्यकार्य में ध्यान नहीं देता । अतः प्रजा ने पुत्र को राजगद्दीपर बैठाकर राजा को नगर बहार निकाल दिया । फिर भी शिकार में तत्पर रहकर यह राजा अकेलाही जंगलमें ही रहता है । मांस का लोभी बनकर खुद के दुःख को समझ नहीं पाता । अन्य से प्राप्त ऐसे मांस को खानेवाला भी अधम होता है, तब तो खुद प्राणियों को मारकर जो मांसाहार करता है उसकी बात क्या करें?

अपवित्र....बिभत्स एवं कृमीओं से भरे हुए मांस को खानेवाला राक्षस और सियार सब समान ही समझना ।''

यह बात हो रही है तभी लालन राजा सियार के पीछे दौडते दौडते औंधे मुँह खड्डे में गिरा और मृत्यु को प्राप्त हुआ ।।

तब शिष्य ने गुरुजी से पूछा - ''क्या राजा को शिकार का फल मिला ?''

जवाब देते हुए गुरुजी ने कहा ''अरे ! यह तो अभी पुष्प ही मिला है । नरक रुप फल तो मिलनेका बाकी है ।''

ऐसी जहाँ व्यसनीओं की अवदशा है, वहाँ ऐसे जीवन में लोकप्रियता कहाँ से संभवित है ? इसीलिये शास्त्रकार महर्षियों ने प्रथम जीवन को व्यसन मुक्त करने की और फिर दान,विनय, शील आदि गुणोंसे अलंकृत कर लोकप्रियता प्राप्त कर अनेकों को धर्मपथ

पर आगे ले जाने की बात बतायी है ।

उदारता, नम्रता और सदाचार के बिना दान,विनय और शील की जीवन में प्राप्ति नहीं हो सकती, और जहाँ दान, विनय, शील न हो वहाँ लोकप्रियता कहाँ संभव है ?

दान धर्मप्राप्ति का प्रथम सोपान है । दान से ही धर्ममार्ग में प्रवेश होता है । दानसे ही त्याग के बीज का वपन होता है ।

देवाधिदेव महावीर स्वामी के जीव को सम्यक्तरत्न की प्राप्ति दान से ही हुई थी ना ?

इस दान की महिमा को विश्व में प्रसिध्द करने के लिये ही तो तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा लेने से पूर्व बारह महिने दान देते है जो सांवत्सरिक दान कहलाता है । इस तरह देवाधिदेव हररोज एक करोड आठ लाख सोना मोहरें दान में देकर दान का संदेश विश्व के जीवों को देते है । जीवन,उत्थान के मूल में दान के संस्कार है । दान से हर इच्छा की पूर्ति होती है ।

संगम के भव में दिये हुए खीर के दान से ही तो शालीभद्र की ऋद्धि विश्व में प्रसिद्ध हुई है ।

दान से ही तो जगडूशाह का नाम आज भी गूँज रहा है ।

दान का प्रत्यक्ष फल यश और किर्ती है जब की परंपरा से पुण्य और मोक्ष की प्राप्ति है ।

नदी जिस जिस प्रदेश में से बहते जाती है, उस उस प्रदेश में हरियाली देखने को मिलती है । नदी जहाँ जहाँ से जाती है वहाँ के मनुष्यों को शांति प्रसन्नता और शीतलता देती है । इसी तरह श्रावक जब दान का प्रवाह बहाता है, तो वह दान का प्रवाह अनेकों के सूने जीवन में हरियाली लाता है । अनेकों के जीवन में शांति, प्रसन्नता और शीतलता भर देता है । श्रावक ऐसे दानधर्म को जाननेवाला, माननेवाला एवं करनेवाला होता है ।

लोकप्रियता का स्वामी बनने के लिये जीवन को जैसे दान के गुणसे अलंकृत करने की आवश्यकता है वैसे ही विनय से जीवन को अलंकृत करना भी जरुर है ।

उदार दिल का दाता भी विनय से ही शोभायमान होता है । और विनय से ही यश-कीर्ति प्राप्त करता है ।

दान हो या विद्या.....

धर्म हो या संसार.....

बहु हो या बेटा.....

धंधा हो या नौकरी....

सभी जगह विनय अत्यंत जरुरी है। विनय से बैरी भी वश होता है । मित्रता भी विनय से टिकती है एवं वृद्धि प्राप्त करती है । विनय सब गुणों में महान है । अनेक गुणों को जीवन में लानेवाला होता है ।

✠✠✠✠✠✠

महल बनाना हो तो कैसे बनाया जाय ?

सर्वप्रथम भूमि का शुद्धिकरण किया जाता है । अस्थियाँ आदि शल्य दूर की जाती हैं ...

भूमि पूजन किया जाता है ।

सादर नींव रखी जाती है ।

इसी तरह,

धर्म का महल बनाना चाहनेवाले श्रावकों को जीवन में से दोषों की बादबाकी करनी पडेगी । दोषों के कचरे को दूर कर पहले जीवन शुद्धि करनी पडेगी । तत्पश्चात एक में एक गुणों का जोड लगाते जीवन में धर्ममहल बनाया जाता है ।

विशिष्ट प्रकार के धर्म की प्राप्ति गुणों के आधीन है । तभी तो श्रावक जीवन में गुणों का महत्व है अतः श्रावक ने गुणों की प्राप्ति के लिये हमेशा प्रयत्न करना चाहिये । श्रावक का जीवन गुणोंसे ही शोभायमान होता है । ऐसे गुणों की हम विचारणा कर रहे है ।

लोकप्रियता के गुणों का प्रभाव अनोखा है ।

दान,शील और विनय के द्वारा ही लोकप्रियता के शिखर को सर कर सकेंगे ।

दान से सब जीव वश होते हैं....

दान से बैर का नाश होता है....

दान से शत्रु बंधु समान होते है....

दान से यश कीर्ति प्राप्त होती है ....

जब दान के साथ शील जुडता है तब जीवन अनुपम

बनता है ।

शील तो जीवनका अनमोल आभूषण है । शील को देव भी नमस्कार करते है । जहाँ दान और शील हो वहाँ विनय का वास स्वयंमेव हो जाता है । ऐसा जीवन स्वयंमेव अनेक अन्य गुणों का धाम बन जाता है ।

जैन इतिहास के पन्ने पन्ने पर ऐसे अनेक लोकप्रिय महापुरुषों के चरित्र अंकित है ।

दुष्काल में सब के बेली बने हुए जगडुशा....

शील के गुणोंसे सुवासित पेथडशा...

दान-शील के संगम समान धन्यकुमार.... कुमारपाल राजवी, अनुपमादेवी, तेजपाल बंधू, विजयसेठ, विजयसेठाणी, उदयन मंत्री ऐसे सब लोकप्रिय बने हुए महानुभावों के जीवन में झाँके तो उनके जीवन का एवं गुणों का हमें सही परिचय होगा ।

चंपा नगरी....

मित्रसेन राजा....

धनमित्र नामक श्रेष्ठी....

धनश्री नामक श्रेष्ठी पत्नी....

धनमित्र एवं धनश्री का जीवन जिनधर्म की आराधना से परिपूर्ण था । अर्थ और काम पुरषार्थ के साथ धर्म पुरुषार्थ साथ में सुंदरता से बुना हुआ था ।

पूर्वभवके पुण्योदय से श्रेष्ठिवर्य को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । पुत्र जन्म से परिवार में आनंद आनंद छा गया । बालक के वर्धापन उत्सव में गाँवकी स्त्रियों ने अक्षत से बधाया और आशीर्वाद देते हुए कहा "हे पुत्र । तम सुजात होना ।"

स्त्रियों का ऐसा आशीर्वाद सुनकर पिताने नाम रखा सुजात ।

सुजात धीरे धीरे बडा होने लगा । उसने युवावस्था प्राप्त की, परंतु उसे माता पिता की ओरसे एवं पूर्वभव की ओर से कोई अनोखे संस्कार प्राप्त हुये थे, समवयस्क यवानों के साथ वह विविध शुभकार्यो में जुड जाता था । कभी प्रभु पूजा भक्ति में लीन बन जाता, कभी भावभीनी स्नात्र भणाता, कभी आचार्य भगवंत के पास धर्मक्रिया सुनने बैठ जाता था, कभी जिन धर्म के सिध्दान्तोका चिंतन मनन करने स्थिर बन जाता, कभी गरिबों को दान देकर जिनशासन की प्रभावना करता, स्वयं जिनदर्शन के आदर्श आचारों का पालन कर अनेकों को इस मार्ग में आकर्षित कर स्थिर करता, मानवी अपने जीवन को सुयोग्य रीतसे बिताये तो अनेकों के लिये धर्म प्रवेश के लिये निमित्त बन जाता है । ऐसी व्यक्ति परिवार में, समाज में, शासन में, नगर में सहजता से लोकप्रिय बन जाते है ।

इसी नगरी में धर्मघोष नामक मंत्री है । उसकी प्रियंगु नामक धर्मपत्नी है, एक बार प्रियंगु की दासीओं ने सुजात को अपने मित्रों के साथ क्रीडा करते देखा । उसका रुप, उसकी चेष्टाअें देखकर दासीयाँ वहीं स्थिर खडी रही, लंबे समय तक उसे एक टक देखती रही, अतः उन्हें घर लौटने में विलंब हुआ । घर लौटने पर प्रियंगु ने ठपका दिया । तब दासियों ने कहा "आज हमारा जन्म सफल हो गया... आज हमने अपूर्व आश्चर्य देखा है । अपने नगरी में धनमित्र श्रेष्ठी का पुत्र सुजात है ।

वचनो से उसका वर्णन करना संभावित नहीं है । दृष्टिमात्र से अत्यंत सुख की प्राप्ति होती है । उनका मुखकमल जिसने देखा नहीं उसका जन्म निष्फल है ।"

प्रियंगु ने यह सुनकर दासियों से कहा " यदि यहाँ से कभी निकले तो मुझे सुजात को बताना ।"

एकबार वहाँ से निकले सुजात को देखकर प्रियंगु उस पर मोहित हो गई । उसका आकर्षक व्यक्तित्व देखकर उसके हृदय का सुजात ने कब्जा ले लिया । प्रियंगु ने सुजात जैसा वेश धारण कर सब दासियों के बीचमे उसका अनुकरण करने लगी । सुजात जैसी चेष्टाअें करने लगी ।

उसी समय अचानक मंत्रीश्वर का घर में आना हुआ । दिवार की आड से मंत्रीश्वर ने प्रियंगु की सब चेष्टाऐं देखी और सतत सुजात सुजात के नाम का जाप सुना । मंत्रीश्वर चमक उठे । ऐसा होगा तो मेरे अंतःपुर

का नाश होगा, यह सुजात निश्चित ही यहाँ आता होगा, पर सबुत हाथ लगे बिना या नजर से देखे बिना दंड करने से परिणाम अच्छा नहीं आयेगा, यह सोच मंत्री विचार में पड गये । ''मैं क्या करुं ?'' बहुत सोच के बाद मंत्री ने एक योजना बनाई ।

एक कागज पर उन्होंने कुछ लिखा और एक अनजान इन्सान को बुलाकर अपनी योजना समझायी । और वह कागज राजा को पहुँचाने को कहा । कागज में लिखा था - ''हे सुजात । तुने मुझे कहा था कि दस दिनों में मैं राजा मित्रप्रभ को बाँधकर तुझे सौपूंगा, पर तुने अबतक यह कार्य पूर्ण नहीं किया.. तेरा तो राज दरबार में आनाजाना चालू हैं ।''

राजा ने यह पत्र पढा वह अत्यंत क्रोधायमान हुआ । सोचने लगा - ''सुजात ऐसा कुछ करे यह संभवित नहीं । कदाचित वह अपराधी हो तब भी उसे प्रगट रीत से दंडित करना शक्य नहीं है । सुजात ऐसा गुनाह करे इस बात पर कोई भी विश्वास नहीं करेगा । संपूर्ण नगर में सब को सुजात अत्यंत प्रिय है, दुसरा कोई उपाय सोचूं ।''

कैसा है लोकप्रियता के गुण का प्रभाव ! राजा जैसा राजा भी ऐसे लोकप्रिय व्यक्ति को सजा करने में समर्थ नहीं है । उसे डर लगता है कही सुजात को सजा कर देनेपर प्रजा राजा के विरोध में आ जाय ।

अतः मित्रप्रभ राजा ने देश के कार्य के निमित्त से सुजात को नगर से दूर अपने सामंत राजवी चंद्रध्वज के पास भेज दिया और बताया की ''इस आने वाले व्यक्ति को गुप्त रीति से मार डालना ।''

सुजात राजाज्ञानुसार चंद्रध्वज राजा के पास पहुँच गया, मित्रप्रभ राजा का पत्र दिया, चंद्रध्वज राजा सुजात की ओर देखने लगा और सोचने लगा ''कहीं मित्रप्रभ राजा की भूल हो रही है, ऐसे सौम्य, सुंदर प्रभावशाली व्यक्ति कोई अकार्य तो नहीं कर सकता, मै उसे मारुंगा नहीं, मैं उसका रक्षण करुंगा ।''

ऐसा सोचकर चंद्रध्वज राजाने एकांत में यह लेख सुजात को पढाया, और कहा की ''इस तरह की राजाज्ञा होने पर भी मैं वैसा नहीं करुंगा, परंतु तुम्हे गुप्त रहना पडेगा ।'' सुजात वैसे ही रहने लगा । समय बीतने पर चंद्रध्वज ने चर्मरोगी ऐसी अपनी बहन चंद्रयशा का विवाह सुजात से कर दिया । सुजात संसारकी असारता का विचार कर समय व्यतीत करता है । चंद्रयशा को धीरे धीरे जिनधर्म समझाता है , आदर्श श्राविका बनाता है, एकबार रोग से पराजय पाकर चंद्रयशा मरण को शरण हुई तब सुजात ने उसे अंतिम आराधना कराई समाधि दी अतः चंद्रयशा देवलोक गई ।

देवलोक प्राप्ति का कारण सुजात को ही ऐसा जानकर उसके पास आती है और उपकारी सुजात को प्रणाम कर ''मैं तुम्हारे लिये क्या करुं?'' ऐसा पूछती है, तब सुजात ने कहा, ''एक बार कलंक रहित होकर माता पिता का दर्शन करुं और फिर जल्द ही दीक्षा अंगीकार करुं ऐसा कुछ करो ।''

देव तुरंत ही चंपानगरी की ओर गया, उन्होंने एक विशाल शीला विकुर्वी और आकाश में से ही राजा को कहा ''हे राजन ! उस दुष्ट मंत्री के झूठे लेख पर विश्वास कर निरपराध ऐसे धर्मी जनों के शिरोमणि समान सुजात का नाश करवाया है, उस का फल भोग, परिवार और प्रजा के साथ मैं सब को यमसदन पहुँचाउंगा।''

ऐसी आकाशवाणी सुनकर राजा घबरा गया, उसने देवता को प्रार्थना की, ''हे देव ! आप दयारहित मत बनो, अब मुझे क्या करना चाहिये यह बताइये, आज्ञा दो, मैं तुम्हारी आज्ञा पालने के लिये बंधा हूं ।''

देव बोला ''हाँ ! तुम्हे तुम्हारे परिवार को एवं प्रजा को बचाना हो तो एक रास्ता है, जल्दीसे अत्यंत सन्मान पूर्वक उसे चंपानगरी में प्रवेश करा ।''

राजा ने बात स्वीकार ली, और पूछा ''अभी वह कहाँ है ?'' देवी ने जवाब दिया की वह नगर के बाहर उधान में बिराजमान है ।

बात सुनकर बडे उत्सवपूर्वक सुजात का नगर प्रवेश कराया, सुजात के माता पिता एवं नगरजन

अत्यंत हर्षित हुअे, सर्वत्र आनंद फैल गया ।

जिनधर्म की प्रभावना हुई । ''जैनम् जयति शासनम् '' का नाद गूँज उठा । राजाज्ञा लेकर सुजात ने माता पिता और अनेक भव्य जीवों के साथ संयम स्वीकारा । सुंदर संयम की आराधना कर सद्गति को प्राप्त होता है ।

आगे चलकर कैवल्य पाकर, निर्वाण पद प्राप्त करेगा ।

यहाँ पर जिनशासन की जो प्रभावना हुई, जैन धर्म का जयजयकार हुआ, इसके पीछे कौन सा रहस्य था, शुद्ध रीति से प्राप्त की हुई लोकप्रियता ।

यह लोकप्रियता अनेकों के जीवन में सद्मार्ग, सद्धर्म के बीज बो देता है । स्वयं को तो सिद्धि प्राप्त होती ही है पर उसके अनुमोदना द्वारा अनेक जीव धर्म पाते हैं । तभी तो शास्त्रकार महर्षियोंने श्रावक के गुणों में लोकप्रियता को स्थान दिया है ।

सच्चे श्रावक बनने के लिये इस गुणको जीवन में लाना आवश्यक है, इस गुण को प्राप्त करने के लिये यथाशक्ति दान देकर, एक दुजे को सहायता, करने का मौका उठाना लाजमी है, आर्य संस्कृति में प्रशंसित शील, सदाचार को जीवन में लानाही पडेगा । सब गुणों के विद्या के मूल समान विनय को आत्मस्थ करना ही पडेगा ।

आम के वृक्ष को कोयल को आमंत्रित नहीं करना पडता, पर मंजरी लगने पर कोयल स्वयंमेव वृक्ष के पास दौडी आती है ।

फुलों को भंवरों को बुलाना नहीं पडता, पुष्प खिले, सुंगध प्रसृत हो तो भ्रमर स्वयंमेव गुंजारव करने लगते हैं ।

व्यक्ति को अपने नाम का खुद ही प्रचार नहीं करना पडता, गुण आ जाये तो लोगों के झुंड के झुंड स्वयंमेव प्रशंसा करने लगते है । व्यक्ति लोकप्रिय बन जाता है ।

सच्ची लोकप्रियता को पाने के लिये धन की जरुरत नहीं, सच्ची लोकप्रियता को पाने के लिये प्रचार की जरुरत नहीं होती ।

सच्ची लोकप्रियता पाने के लिये लोगों को जमा करना जरुरी नहीं होता ।

एक बार आजमा लो ।

जो आता है, उससे सस्मित बात करना

बडों का विनय करना,

दृष्टि निर्मल और निर्विकार रखना,

सब को सहायता करने सदा तैयार रहना,

बस तुम्हें स्वयंमेव अनुभव होगा की लोकप्रियता तुम्हारे चरण चुमते आयेगी ।

५ अक्रूर

क्रूरो किलिट्ठभावो, सम्मं धम्मं न साहिउ तरई ।
इय सो न एत्य जोगो, जोगो पुण होई अक्करो ।।

जहाँ क्रूरता है, वहाँ क्लिष्ट परिणाम है,

जहाँ क्लिष्ट परिणाम हैं, वहाँ धर्म संभव नहीं,

धर्म करना हो तो चाहिये अक्लिष्ट परिणाम,

और अक्लिष्ट मन के परिणाम चाहिये तो अक्रूरता अनिवार्य है ।

इसीलिये श्रावक के गुणों की विचारणा करते हुए पाँचवे गुण को बताते हुए शास्त्रकार महर्षि कहते हैं की श्रावक अक्रूर होता है ।

क्रूरता करुणा और मैत्री के परिणाम की घातक होती है । क्रूर मानवी सदा पर के छिद्र देखने में ही लगा रहता है । औरों के छिद्र देखने से मन हमेशा कलुषित रहता है । मन को कहीं भी शांति नहीं मिलती । अच्छा सोचने समझने के भाव जागते नहीं है ।

आज की दुनिया में मानते है ''छोटा कुटुंब-सुखी कुटुंब'' परंतु परमात्माका शासन कहता है '' गुणी जीवन सुखी जीवन''। जीवन को सुख से भरपूर बनाना हो तो सबसे पहले मन को सुखी बनाना पडता है । मन को सुख कहाँ मिलेगा, गुणों के बगीया में या गंदगी के ढेर पर ? आज हमने हमारे जीवन को बगीया जैसा बनाने की जरुरत है । पर इसके विपरित आज हम अपने मनमें दुनिया भर की गंदगी भरने के लिये तैयार

बैठे है, अपने स्वंय के जीवन को स्वयं के हाथों से कचरा बना रहे है ।

पाश्चिमात्य जीवन पध्दति ने श्रावकों के जीवन को भी कलंकीत किया है । प्रेम और मैत्री के पाठ भूला दिये है । सामान्य स्वार्थ के लिये भाई भाई को मारने के लिये तैयार हो जाते है, बेटा बाप को मारने के लिये तैयार हो जाता है, सास ससुर साथ मिलकर बहु को जलाने के लिये तैयार हो जाते है । ये सब अपने हिंसक मानस का परिणाम है ।

जहाँ किसी को जान से मारने तक की क्रूरता भरी पडी हो वहाँ धर्मवृक्ष पल्लवित कहाँसे हो सके ? ऐसे जीवन में धर्म की अपेक्षा रखना ही मूर्खता है ।

पत्थर के उपर कमल नहीं खिल सकता, वैसे ही क्रूरता से भरे हुए हृदय में धर्म कदापि हो नहीं सकता ।

शास्त्र लिखते है नारी हृदय के परिणाम अत्यंत क्लिष्ट कभी भी नहीं बन सकते । अतः नारी ज्यादा में ज्यादा छठवी नारकी तक ही जा सकती है, सातवी नारकी में जा ही नहीं सकती, परंतु आज के समय में नारी की क्रूरता देखकर आत्मा रोने लगती है । श्रावक के घरमें यदि नारी ऐसे क्रूर परिणामों वाली बनेगी तो धर्म कहाँ से टिकेगा ?

एक दिन दोपहर का समय था । उपाश्रय में शांति थी, आवागमन नहीं था । एक परिचित बहन आयी । वंदन किया, सुखशाता पूछी और पास में बैठी । आजूबाजू नजर कर किसी को न देखकर कहा ''साहेबजी आलोचना लेनी है ।''

मुझसे रहा न गया और पूछ बैठी ''किस बात की आलोचना लेनी है ?''

बहन नीचे देखने लगी, बहन के आँखों से आँसू की धारा बहने लगी । मेरे कुछ समझ में नहीं आया, थोडा रुककर थोडे समय के बाद बहन कहने लगी ''साहेब जी सबकी बातों में आकर मैं भान भूल गयी। न करने का कर बैठी । साहेब ! सबने कहा गर्भ में तीन महिने तक जीव नहीं होता, और मै ने गर्भपात करवा लिया । साहेब अब कहीं भी चैन नहीं है । आत्मा में सतत शल्य चुभता रहता है । साहेब ! उस जीव का क्या हुआ होगा और साहेब मेरा क्या होगा ? साहेब ! मुझे बचा लो यह भूल एकबार नहीं दो बार मुझसे हो गई है ।

मैं सुनती ही रह गई । मेरी विचार करने की शक्ति भी गुम हो गई । मेरे कानों पर मेरा विश्वास नहीं बैठ रहा था । क्या श्रावक के कुल में जन्मी बालिका ने जिन हाथों से जिनेश्वर भगवंतों की पूजा की है, अनेक साधु साध्वी भगवंतों को दान दिया है, वही हाथ पंचेन्द्रिय, निष्पाप जीव की हत्या से लिप्त हैं, माता ही खुद अपने बच्चे की हत्यारिन बनी है, क्षण के लिये मुझे लगा मैने मस्तिष्क का संतुलन खो दिया है, मन को लगा उस बहन को कह दूँ, ''चली जा यहाँ से, हमारा उपाश्रय अपवित्र करने फिर से मत आना''।

तभी बहन ने फिर से कहा ''महाराज साहेब ! एकबार आलोचना दे दो , फिर से ऐसी भूल नहीं होगी'' आगे कहा ''साहेब जितने कहोगे उतने उपवास कर लूँगी ।''

''बहन, भूल की आलोचना होती है पर जानबूझ कर अपने सुख के खातिर जब निष्पाप पंचेन्द्रिय जीव की क्रूरता से हत्या करते है, तब उसकी आलोचना क्या हो सकती है ? और उसी भूल को ठंडे कलेजे से दोहराकर तुम उसकी आलोचना लेने आई हो ? मैं नहीं जानती उसकी क्या आलोचना हो सकती है ? तुम कोई गीतार्थ आचार्य के पास आलोचना लो तो वह योग्य होगा ।''

बहन तो चली गयी पर आज के संसार की भयानकता के बीज मेरे दिलो दिमाग में बोती गई उसकी भयंकरता के विचार आज भी मेरे मस्तिष्क से निकलते नहीं है ।

स्वार्थ एवं सुख केन्द्रिय जीव स्वयं के सुख के लिये क्या करेगा इसका कोई भरोसा नहीं है ।

थोडे समय पहले ऐसी ही एक बात सुनने में आई । एक कन्या स्कूल का शिक्षण पूर्ण कर कॉलेज में गई ।

कॉलेज में पढाई के साथ किसी युवक से परिचय हुआ । परिचय धीरे धीरे प्यार में परिवर्तीत हो गया । बहुत बहुत विरोध के बाद दोनो पक्षों ने विवाह के लिये सम्मती दी । दोनों की शादी हुई । थोडे दिन सब बराबर चला, एक दिन पत्नी ने पती से कहा ''इस छोटे से गाँव में न तो तुम आगे बढ सकोगे, न तो मुझे स्वतंत्रता मिल सकेगी, इससे तो हम शहर में जायें और आनंद से रहें ।''

पति ने पत्नी की बात सुन ली । उसने जवाब नहीं दिया । पर इस तरह बात को छोड दे वो दूसरा । पत्नीने दो-तीन बार वही बात पति से कही पति ने कहा ''सुन, मैं मेरे माता-पिता का अकेला बेटा हूँ । मुझे पालपोस कर बडा करने में उन्होंने बडे कष्ट उठाये है , अब उन्हें आराम देने के समय मैं उन्हें छोडकर दूर जाऊं, यह योग्य नहीं है । अतः झूठी जिद न कर, जो जैसा है उसमें संतोष मान ले ।

पत्नी ने पति को समझाने का प्रयत्न किया । दोनों को एक दूसरे को समझाने में निष्फलता मिली, आखिरकार पत्नी ने पति को चेतावनी दी कि ''मेरी बात न मानो तो परिणाम अच्छा नहीं होगा ।''

और थोडे ही दिनों में ऑफिस से लौटते हुए पति का रास्ते में ही काम तमाम करवा दिया ।

प्रेम और वात्सल्य की मूर्ति कहलाने वाली आर्य नारी जब हत्यारी बनी है, तब धर्म की क्या अपेक्षा रखें, ऐसे क्रूर जिसके मन के परिणाम हो उसमें कभी भी धर्म की योग्यता हो नहीं सकती ।

हाँ परमात्मा के शासन में चोर-लुटेरे और हत्यारे भी तिर गये, पर सोचो कब ? जब वे जागे, उन्हें अपनी भूल समझ गई, जितनी भूल बडी उतना पश्चाताप भी गहरा था, उतनी ही आराधना भी जबर्दस्त थी । आज हम भूलों पर भूलें, पापों पर पाप करते जा रहे है, परंतु उसके पीछे न ही, सच्चा पश्चाताप है, न ही पापों को छोडने की प्रतिज्ञा और न प्रायश्चित फिर जीवन शुद्धि कैसे संभव है ?

जीवन जब तक क्रूरता से भरा हुआ है, तबतक सतत अशुभ ध्यान और अशुभ विचारों के भंवर में आत्मा फंसा है । ऐसे आत्मा में शुभ विचारों को अवकाश कहाँ ? तब शुद्ध धर्म कैसे प्रवेश कर पायेगा ?

धर्म मार्ग में प्रवेश करने के लिये क्रूरता दूर करने की आवश्यकता है । अक्रूर बनकर ही धर्म का आचरण होता है । क्रूर मनुष्य कदाचित धर्म मार्ग में आ जाय पर वहाँ धर्म टिक नहीं सकता । पहले हृदय में से क्रूरता जाय फिर धर्म का वास होता है ।

चिलातीपुत्र सुषमा का मस्तक और खून से लथपथ तलवार लेकर जंगल की ओर दौड रहा है, वहाँ उसे एक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ दशा में खडे मुनि के दर्शन हुए । मुनि को तलवार बताकर कहता है ''धर्म बताओ, नहीं तो इस के जैसे तुम्हारे भी हाल होंगे ।''

मुनि ने ''उपशम, विवेक और संवर'' तीन शब्दों में धर्म कहकर सुनाया और आकाश में उड गये ।

चिलातीपुत्र मुनि के स्थान पर ध्यानस्थ खडे रहते हैं, और उपशम,विवेक, संवर पर चिंतन करते हैं । क्रूरता मानवी की विचार शक्ति का नाश करता है । मानवी आवेश में भान भूल जाता है । सारासार का विवेक चूक जाता है । संवर की साधना दूर रह जाती है । इन सब बातों का चिलातीपुत्र को ख्याल आता है । चिलातीपुत्र की गाडी अशुभ से शुभ की ओर प्रयाण करती है ।

प्रथम क्रूरता पर विजय मिलाया, कषाय मंद हुए । चिलातीपुत्र शांतिपूर्वक चिंतन की दुनिया में आगे बढे । खयाल आया रागद्वेष में शांति नहीं अशांति है । हाथ में से सुषमा का मस्तक और तलवार का त्याग किया । उपशम में से विवेक में और विवेक से संवर में प्रवेश किया, और अंत में आत्मकल्याण किया ।

सब के मूल में क्रूरता का त्याग करना महत्व का है । हम हमारे हृदय को जाँचे वहाँ क्रूरता का वास है या अक्रूरता को स्थान है । जाने या अनजाने क्रूरता का प्रवेश न हो इसके लिये जागृत बनें और अक्रूरता को ज्यादा से ज्यादा मजबूत करें ।

जीव-विचार

दो और तीन इन्द्रिय वाले जीवों का परिचय पाने के पश्चात आईये हम चउरेन्द्रिय जीवों को जाने -

''चउरिंदियाय विच्छु,
ढिंकुण भमराय भमरिया तिड्डा ।
मच्छिय डंसा मसगा,
कंसारी कविल डोलाई ।। १८ ।।

भावार्थ : बिच्छु, बगाई, भँवरा, भँवरी, तीड, मक्खी, डांस, मच्छर, कपिल तथा मकडी ये चउरेन्द्रिय जीव हैं ।

उपर बताये चउरेन्द्रिय जीवों की द्वीइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीवों की तरह ही, जयणा पालने की है । साथ ही साथ हमारी आत्मा भी इन सभी जीवयोनि में अनंत बार जन्म मरण कर चुका है । इसलिये ही तो कहा है -

न सा जाई, नसा जोणी,
न तं ठाणं न तं कुलं ।
न जाया न मुआ जत्थ,
सव्वे जीवा अणंतसो ।।

ऐसी कोई भी जाति नहीं, ऐसी कोई भी योनी नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं, जहाँ सभी जीव अनंत बार जन्मे न हो और मरे न हो ।

हमारा आत्मा निगोद से लेकर सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, तेइन्द्रिय,चउरेन्द्रिय आदि में अनादि काल से भटकता रहा है, कहीं अकाम निर्जरा से वर्तमान में उसे पंचेन्द्रियपना, मनुष्यभव और ऐसी सूक्ष्म समझ देने वाला परमात्मा का शासन मिला है, तो इस भव में जाग कर भवभ्रमण को तोडने के लिये भगीरथ पुरुषार्थ करना चाहिये, जिस से पुनः ऐसी गतियों में उसे घूमना न पडे । जीवों के प्रकार, भेद-प्रभेद जीव का भवभ्रमण, इन सभी का जो गहराई से विचार करने में आये तो जीवन में वैराग्य, भवनिर्वेद, आदि गुणों की प्राप्ति हो सकती है । और जीवदया जयणा पालन आदि में भी वृद्धि होगी, आत्मा धर्माभिमुख बनेगा । जीवदया के सच्चे परिणाम के बगैर जीवन में सच्ची शांति असंभवित है । जो भी अपना आत्म कल्याण साध सके हैं, उन्होंनें जीवदया को प्राण से भी अधिक महत्व दिया है ।

एक नगरी में ब्राम्हण पुत्र, पढाई में बहुत होशियार था, काशी जाकर विद्या में पारगामी बनता है । इतना विद्वान होने के बावजुद भी उसे जहाँ तहाँ अपयश ही मिलता है, किसी कार्य में यश मिलता नहीं, कंटाल जाता है, त्रासित हो जाता है । एक बार ज्ञानी मुनिराज मिल जाने पर उन्हें प्रश्न पूछता है ''इतनी विद्वता होने के बाद भी अपयश का कारण क्या ?'' ज्ञानी भगवंत जवाब देते हुए बताते हैं '' हे वत्स ! पूर्व भव में तूने संयम का स्वीकार किया था, लेकिन जीवदया के सुंदर परिणामों को आत्मसात न करने के कारण तू शिथीलाचारी बना जिसके परिणाम से इस भव में विद्या तो मिली पर अपयश मिलता है । पुनः संयम लेकर रोम रोम में जीवदया को बसा ले तेरा अपयश, महायश में बदल जायेगा ।''

कितना अद्‌भूत महिमा है जीवदया का !

ज्ञानी भगवंत की वाणी सुनकर स्वयं का पूर्वभव जानकर, वैराग्य पाकर इस बाह्मण पुत्र ने संयम स्वीकार किया और जयणा तथा जीवदया को जीवन मंत्र बनाया । सूक्ष्म में सूक्ष्म जंतु का भी जीवन में विचार करने लगा । इनके अदभूत संयम पालन की इंद्र

महाराज ने देवलोक में प्रशंसा की ।

मानव की इन्द्र मुख से प्रशंसा सुन कर इर्ष्या सें एक देव ने मुनिराज को जीवदया के भाव से पतित करने की प्रतिज्ञा ली और वो इस धरती पर पधारे, ध्यानस्थ दशा में खडे मुनिराज के पास ये देव हाथी का रुप लेकर आये, सूंढ में पकड कर गोल गोल घुमा कर आकाश में उछाला, आकाश में उछल रहे मुनिराज नीचे गिरते मेरा क्या होगा ? यह विचार करने के बजाय मेरे नीचे गिरते ही मेरे शरीर के नीचे कितने निर्दोष जीव कुचले जायेंगे ? ऐसी विचारणा करने लगे उनकी वेदना के विचार से उनकी आंखे भर आई, स्वयं की वेदना भूल गये ।

अवधिज्ञान से मुनिराज की ऐसी अलौकिक विचारणा जानकर देव मुनिराज के चरणों मे झुक कर माफी मांगता है, क्षमा की याचना कर उनके जीवदया के परिणाम की खूब खूब प्रशंसा, अनुमोदना कर स्व·स्थान पर जाता है, मुनिराज आत्मकल्याण साधते हैं ।

जीव विचार के अभ्यास के द्वारा जीवदया के ऐसे परिणाम हमारे हृदय में भी प्रगटे, जीव विराधना से आत्मा में भय, कंपन निर्माण हो, सभी जीवों के सुख की भावना वृद्धिगत हो । प्राणों का भोग देकर भी प्राणी को बचाने की जीव का भोग देकर भी जीवों को अभयदान देने की अनमोल विचारणा हमारे रोम रोम में व्याप्त हो जाये यही जीव-विचार पढने का जानने का सच्चा फल है ।

ये द्विइंद्रिय से लेकर चउरेंद्रिय तक के तमाम जीव विकलेंद्रिय कहलाते हैं । विकल याने कम । सभी मिलकर कुल पाँच इंद्रिया है, इससे एकाद भी इंद्रिय जिस जीव को कम हो वह विकलेंद्रिय कहलाता है ।

आज जब दुनिया में हिंसा का तांडव नृत्य चल रहा है, अंडे को शाकाहारी बताकर उसका प्रचार कर उसे खाने के लिये युवको को ललचा रहे हैं, मांसाहारी होटले दिन ब दिन बढ रही है, ऐसे समय में जीव विचार का ज्ञान अति आवश्यक बन जाता है । हमने एकेंद्रिय, द्विइंद्रिय, तेइंद्रिय, चउरेंद्रिय जीवों की विचारणा कर ली अब हमें पंचेंद्रिय जीवों का विचार करना है । पंचेंद्रिय जीवों में चारों चार गति के जीवों का समावेश होता है, नारकी के जीव, तिर्थंच गति के जीव, मनुष्य गति के जीव एवम् देव गति के जीव

पंचिंदिया य चउहा,
नारय तिरिया मणुस्स देवाय ।
नेरइया सतविहा नायव्वा
पुढवि भेअेणं ।। १९।।

पंचेंद्रिय जीव नारक,तिर्थंच, मनुष्य और देव के भेद से चार प्रकार हैं । इसमें पृथ्वीओं के भेद से नारक सात प्रकार के जानना ।

जैन भूगोल की व्यवस्था की विचारणा करें तो ख्याल आयेगा की नारक विश्व व्यवस्था में नीचे के भाग में हैं, जहाँ दुःख (पाप की विपुलता) है, उससे उपर उससे कम दु;ख (पाप) वाले तिर्यंच तथा सुख-दुख का (पाप-पुण्यका) मिश्र फल भोगने वाले मनुष्य है, उनसे भी उपर ज्यादा सुख (पुण्य) भोगने वाले विविध देव हैं और चौदह राजलोक के उच्च स्थान पर अनंत, शाश्वत सुख को भोगने वाले सिद्ध हैं ।

पंचेंद्रिय जीव ऐसे हैं जो चार गति और तीन लोक में व्याप्त हैं, ये जीव भले स्वयं के कर्मानुसार पुण्य पाप भोगते हों पर पुरुषार्थ के द्वारा पाप को अटकाकर पुण्य की वृद्धि करने में, पाप को खपाने में समर्थ हैं, इसमें हमारा सभी का नंबर तो मनुष्य में आता है, अगर चाहें तो सभी कर्म खपा कर, संसार में से बाहर निकल मुक्त बन सकते हैं ।संसार में से छूटने के लिये जयणा और करुणा चाहिये, जयणा और करुणा के लिये जीव-विचार का गहरा ज्ञान चाहिये ।

चौदह राजलोक में नीचे के सात राजलोक में सात नारक पृथ्वीयाँ हैं, जिनके नाम-गोत्र और लम्बाई नीचे

मुजब है -

नरक	नाम	गोत्र	लंबाई
१.	धम्मा	रत्नप्रभा	१ राज
२.	वंशा	शर्करप्रभा	२ राज
३.	शेला	वालुकाप्रभा	३ राज
४.	अंजना	पंकप्रभा	४ राज
५.	रिष्टा	धुम्रप्रभा	५ राज
६.	मघा	तमःप्रभा	६ राज
७.	माघवती	तमस्तमःप्रभा	७ राज

प्रत्येक पृथ्वी में नीचे आकशद्रव्य होता है, उसके अमुक भाग में तनुवात, उसमें घनवात, उसमें घनोदधि, उसमें नारक पृथ्वी होती है, इस नारक पृथ्वी में नरक के जीव कुंभी में उत्पन्न होते हैं, रहते हैं, विविध प्रकार के दुःखो को (पापोंको) भोगते हैं।

सतत दुःख को भोगते नरक के जीवों को क्षणभर भी दुःख से मुक्ति मिलती नहीं, पर जब तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है, तब सातों नरक में क्षणभर के लिये उजाला होता है और नरक के जीवों को क्षणभर के लिये सुख की अनुभति होती है, तब कितनेक नारकी परमात्मा का कल्याणक जानकर उसकी अनुमोदना के द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं, ऐसी घटना कदाचित ही बनती हैं, पर असंभवित नहीं है।

क्षायिक समकित के स्वामी ऐसे श्रेणिक राजा जैसे तीर्थंकर बनने वाली आत्मायें भी पूर्व में बांधे गये आयुकर्म के उदय से नरक में जाते हैं, पर समता से कर्म भोगकर, नये कर्म न बांध कर अद्भूत कर्म निर्जरा करते हैं।

इससे ऐसा नहीं लगता की क्षेत्र चाहे जो भी हो ज्ञानी कर्मो को तोडते हैं और अज्ञानी क्षण क्षण कर्म बांधते हैं। ज्ञान की बलिहारी है। ज्ञानी नरक में भी कर्म तोड सकते हैं, जबकि अज्ञानी समवसरण में भी कर्म बाँध सकते हैं।

सात प्रकार के नरक के जीवों का पर्याप्त और अपर्याप्त इस तरह भेद करते चौदह भेद नारकी के होते हैं।

नव - तत्व.... (पाप तत्व तथा आश्रव तत्व)

पाप तत्व

विश्व में दुःख, दर्द दोषों का साम्राज्य किसलिये ?

अनुकुलता की इच्छा, इसके लिये ही पुरुषार्थ फिर भी जीवन में प्रतिकूलता किसलिये ?

सभी जीव को सुख की इच्छा है, परंतु सुख मिलता नहीं, दुःख पीछा छोडता नहीं, इसका मूल कारण पाप है । अपनी ही पूर्व जीवन की अशुभ प्रवृत्ति है।

नीम या बबूल बोने वाले को आम कहाँ से मिले ?

अशुभ कर्म करके आये जीव को शुभफल कहां से मिले, पाप कर्म करके आये जीव को सुख कहाँ से मिले ?

पाप और पुण्य का खेल अजीबोगरीब है । हम अनादि काल से इसमें फँसे हुए हैं । शीघ्र ही इस खेल को समझ कर इससे बाहर निकल जाने की जरुरत है । जब इस बात की समझ आयेगी तब समय भी नहीं लगेगा । आईये, हम इस पाप तत्व को समझने का प्रयत्न करें, पापकर्म हमें अच्छा ज्ञान ध्यान नहीं देगा, लाभ,दान,भोग, उपभोग और उसकी सामग्री भी नहीं देगा ।

अच्छी गति, अच्छा शरीर, अच्छा स्वास्थ, अच्छा बल-शक्ति वगैरह भी प्राप्त होने नहीं देगा ।

नहीं चाहिये ऐसे फल तो अटक जायें पापकर्म के बंध से । आज ही इसी क्षणसे अठारह पाप स्थानो से दूर हों जायें, पाप से बचिये दुःख से अटकिये ।

''नाणंतराय दसगं, नवबीअे नीअसाय मिच्छतं ।
थावर दस नरय तिगं, कसाय पण वीस तिरिय दुगं ।। १८ ।।

ज्ञानावरणीय और अन्तराय मिलकर दश, दूसरें में (दशर्नावरणीय) नव, नीच गोत्र, अशााावेदनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, स्थावर दशक, नरक त्रिक, पच्चीस कषाय और तिर्यंचद्विक ।

पाप प्रतिकूलता को देने वाला है । पाप ८२ प्रकार से भोगा जाता है । वे ८२ प्रकार यहाँ विस्तार से बताये गये हैं ।

ज्ञानावरणीय और अंतराय कर्म के दश भेद पाप कर्म में आते हैं । वे निम्नानुसार हैं -

१) मतिज्ञानावरणीय कर्म - इंद्रिय और मन से जाने वो मतिज्ञान उसे आवरण करे वो मतिज्ञानावरणीय कर्म ।

२) श्रुतज्ञानावरणीय कर्म - सुनकर, सद्शास्त्र का जो ज्ञान प्राप्त हो वो श्रुतज्ञान उसे आवरण करे वो श्रुतज्ञानावरणीय कर्म ।

३) अवधिज्ञानावरणीय कर्म - अवधी याने मर्यादा, मर्यादा में रहे हुए रुपी पदार्थो को जानना वो अवधिज्ञान उसे आवरण करे वो अवधिज्ञानावरणीय कर्म ।

४) मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म - ढाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पंचेंद्रिय के मनोगत भाव जानना वो मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म ।

५) केवलज्ञानावरणीय कर्म - अखंडरुप से लोकालोक का तथा रुपी-अरुपी सभी द्रव्यों का तथा जीवाजीव सभी पर्याय को समकाल में जानना वो केवलज्ञान । उसे आवरण करे वो केवलज्ञानावरणीय कर्म ।

६. दानांराय कर्म - जिसके कारण शक्ति संयोग होते हुए भी, दान का महिमा जानते हुए भी दान देने का उत्साह न हो वह दानांतराय कर्म ।

७. लाभांतराय कर्म - पात्रता योग्यता होते हुए भी लाभ न होने दे वह लाभांतराय कर्म ।

८) भोगांतराय कर्म - सभी प्रकार की भोग सामग्री उपलब्ध होते हुए भी जीव को भोगने न दे वह भोगांतराय कर्म ।

९) उपभोगांतराय कर्म - सभी प्रकार की उपभोग की सामग्री उपलब्ध होते भी जीव उसका उपभोग न कर सके वो उपभोगांतराय कर्म ।

१०) वीर्यातंराय कर्म - युवान हो, निरोगी हो, समर्थ होते हुए भी बल (शक्ति) को प्रकट करने का मन ही न हो वह वीर्यांतराय कर्म ।

आगे दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेद बताते हैं ।
(४ दर्शन + ५ निद्रा)

११. चक्षुदर्शनावरणीय कर्म - जिससे चक्षुइंद्रिय की शक्ति को आवरण हो वह चक्षुदर्शनावरणीय कर्म ।

१२. अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म - जिससे चक्षु के अलावा चार इंद्रिय और मन इन पाँच की शक्ति का आवरण हो वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म ।

१३. अवधिदर्शनावरणीय कर्म - जिससे अवधिदर्शन का आवरण हो वह अवधिदर्शनावरणीय कर्म ।

१४. केवलदर्शनावरणीय कर्म - जिससे केवल दर्शन का आवरण हो वह केवल दर्शनावरणीय कर्म ।

१५. निद्रा (नींद) - सुख पूर्वक जाग सके वो निद्रा ।

१६. निद्रा - निद्रा - दुःख पूर्वक जाग सके वो निद्रा-निद्रा ।

१७, प्रचला - बैठे बैठे या खडे खडे नींद करे वह प्रचला ।

१८. प्रचला -प्रचला - चलते चलते नींद करे वह प्रचला प्रचला ।

१९. थिणद्धि / स्त्यानर्द्धि - दिन में सोचे हुए कृत्यों को निद्रवस्था में रात्रि में कर आवे । प्रथम संघयण (वज्रऋषभनाराच) वाले जीव को वासुदेव से आधा बल नींद में होता है । अन्य सामान्य व्यक्ति में वर्तमान में हो उससे ७-८ गुना ज्यादा नींद में होता है ऐसी निद्रा थिणद्धि निद्रा ।

२०) नीच गोत्र - हलके कुल, जाति, वंश में जन्म दिलाये वो नीच गोत्र कर्म।

२१. अशातावेदनीय कर्म - शरीर में अशाता, वेदना, पीडा या दुःख की प्राप्ति हो वो अशाता वेदनीय कर्म ।

२२. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म - तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररुपित मार्ग से विपरीत मार्ग में श्रद्धा हो वो मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ।

२३. नरक गति - नरक गति दिलाता हैं ।

२४. नरकानु पूर्वी - नरक गति की तरफ ले (खींचकर) जाता है ।

२५. नरकायुष्य - नरकगति के कोई भी एक भव में जन्म मे मृत्यु तक टिका कर रखने वाला कर्म वो नरकायुष्य ।

२५ कषाय मोहनीय में १६ कषाय और ९ नोकषाय का समावेश होता है ।

१६ कषायमें - १) क्रोध २) मान ३) माया ४) लोभ ये चार हैं । इन चारों के चार-चार भेद हैं - १) अनंतानुबंधी २) अप्रत्याख्यानी ३) प्रत्याख्यानी और ४) संज्वलन ये सोलह (१६) भेद होते हैं । इनमें १) हास्य २) रति ३) अरति ४) शोक ५) भय ६) दुगंच्छा ७) स्त्रीवेद ८) पुरुष वेद ९) नपुंसकवेद । ये नव नौकषाय मिलकर २५ भेद, इन २५ भेदों को उपरोक्त २५ भैद मिलाने पर कुल ५० भेद हुए ।

५१) तिर्यंग गति - यह कर्म तिर्यंच गति दिलाता हैं ।

५२) तिर्यंचानुपूर्वी - तिर्यंचगति की तरफ ले (खींचकर) जाता है ।

इग बिति चउ जाईओ, कुरवगई उवधाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वण्ण चउ, अपढम संघयण संठाणा ।।

अेकेंद्रिय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और चउरेंद्रिय जाति, अशुभ विहायोगति, उपघात, अप्रशस्त, वर्णचतुष्क, प्रथम को छोडकर अन्य संहनन और संस्थान ये पापतत्व के भेद हैं ।

५३) एकेंद्रिय जाति - स्पर्शेन्द्रिय वाले शरीर की प्राप्ति । उदा. पृथ्विकाय, अपकाय

५४) बेइंद्रिय जाति - दो इंद्रिय (स्पर्श-रस) वाले शरीर की प्राप्ति । उदा. शंख, कोडी

५५) तेइंद्रिय जाति - तीन इंद्रिय वाले शरीर की प्राप्ति । (स्पर्श,रस, घ्राणेंद्रिय) उदा. जूं, खटमल

५६) चउरेंद्रिय जाति - चार इंद्रिय (स्पर्श,रस,घ्राण, चक्षुरेंद्रिय) वाले शरीर की प्राप्ति । उदा. बिच्छु, पतंगा

५७) अशुभ विहायोगति - दुसरों को अच्छी न लगे ऐसी चलने की कुलक्षणी रीत वो अशुभ विहायोगति । उदा. ऊंट, गधा

५८) उपघात नाम कर्म - स्वशरीर के अवयवों से स्वयं क्लेशित हो वह उपघात नाम कर्म (पटजीभ, रसोली वगैरह)

५९) अशुभ वर्ण - कृष्ण (काला) और नीला अशुभ वर्ण

है जिसकी प्राप्ति पाप से होती है ।

६०) अशुभ गंध - दुर्गंध अथवा असुरभि अशुभ गंध है । जैसे लहसुन

६१) अशुभ रस - तीखा, कडवा अशुभ रस है, जिसकी प्राप्ति पाप से होती है ।

६२) अशुभ स्पर्श - भारी, खुरदुरा, शीत तथा रुक्ष ये चार अशुभ स्पर्श हैं, जिसकी प्राप्ति पाप से होती है ।

६३) ऋषभनाराच संघयण - जिस शरीर में हड्डियों के जोड दोनों तरफ मर्कटबंध वाले हों उनके उपर हड्डी की पट्टी भी हो परंतु हड्डी की कील न हो, वह वज्रऋषभ नाराच संघयण ।

६४) नाराच संघयण - मात्र दो मर्कट बंध हो पट्टी और कील न हो ऐसा जोडों का गठन ।

६५) अर्धनाराच - जहाँ एक तरफ मर्कटबंध हो, किन्तु पट्टी और कील न हो ऐसा हड्डीओं के जोडों का गठन ।

६६) किलिका - हड्डीओं के जोड में मात्र कील हो ऐसा गठन ।

६७) सेवार्त / छेवट्ठा - शरीर के जोडों में हड्डियों के दोनों कोने आपस में मात्र स्पर्श करते हों ।

६८) न्यग्रोध संस्थान - वटवृक्ष के झाड की तरह, नाभि के उपर का भाग लक्षणयुक्त, नाभि नीचे का भाग लक्षणरहित होता है ।

६९) सादि - संस्थान - नाभि से नीचे का भाग लक्षणयुक्त, उपर का भाग लक्षण रहित होता है ।

७०) वामन - संस्थान - हाथ, पैर, मस्तक और कमर ये चार लक्षण रहित होते हैं, पेट वगैरह लक्षणयुक्त होते हैं ।

७१) कुब्ज संस्थान - वामन संस्थान से विपरीत कुब्ज संस्थान हैं ।

७२) हुंडक संस्थान - जहां सर्व अंग लक्षण रहित होते हैं ।

थावर सहुम अपज्जं, साहारण मथिर मसुभ दुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्ज जसं, थावर दसगं विवज्जथं ।। २०।।

स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और अपयश

७३) स्थावर नामकर्म - के उदय से जीव को स्थावर पना प्राप्त होता है, जिससे वह स्वेच्छा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा नहीं सकता । उदा. एकेंद्रिय - पत्थर, पानी, अग्नि वगैरह ।

७४) सूक्ष्मनामकर्म - के उदय से जीव को सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति होती है, जिससे अनंत भी मिल जायें तो भी चर्मचक्षु से देख न सकें ।

७५) अपर्याप्त नामकर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियां पूर्ण करने मे समर्थ नहीं होता ।

७६) साधारण नामकर्म के उदय से जीव को अलग शरीर नहीं मिलता, परंतु एक शरीर में अनेक जीवों को रहना पडता हैं । उदा. आलू, प्याज

७७) अस्थिर नामकर्म - के उदय से जीव को अस्थिर अवयवों की प्राप्ति होती है । उदा. पलक, कान, जीभ वगैरह ।

७८) अशुभ नामकर्म - के उदय से नाभि से नीचे पैर तक के अशुभ अवयवों की प्राप्ति होती हैं ।

७९) दुर्भग नामकर्म - के उदय से जीव किसी को भी अच्छा न लगे, सभी को बुरा लगे ।

८०) दुस्वर नामकर्म - के उदय से किसी को भी अच्छा न लगे ऐसे कठोर कर्कश स्वर (आवाज) की प्राप्ति जीव को होती है ।

८१) अनोदयनामकर्म - के उदय से जीव के सच्चे, अच्छे, हितकारी वचन भी कोई सुनने या मानने की इच्छा नहीं करता ।

८२) अपयश नामकर्म - के उदय से लोकोपकारी कार्य करने पर भी यश और किर्ती की प्राप्ति नहीं होती, अपयश ही प्राप्त होता है ।

इन दस कर्म का समुह त्रस दशक से विपरीत है । इन दस कर्म का समुह स्थावर दशक के नाम से जाना जाता है । ये दस अशुभ कर्म हैं । जिससे इनका समावेश पाप तत्व में होता है । ये कुल ८२ पाप प्रकृतियां है । उपार्जित (बांधा हुआ) पाप इन ८२ प्रकृतियों द्वारा भोगा जाता हैं ।

आश्रव तत्व :-

इंदियकसाय अव्वय, जोगा पंच चउ पंच तिन्नीकम्मा ।
किरियाओ पणवीसं, इमा उ ताओ अणुक्कमसो ।।२१।।

इंद्रिय, कषाय,अव्रत, योग अनुक्रम से पाँच, चार, पाँच और तीन हैं । क्रियायें पच्चीस हैं, और उनका अनुक्रम इस प्रकार हैं ।

आश्रव तत्व के ४२ भेद बताते हैं -

इंद्रिय-५ + कषाय -४ + अव्रत -५ + योग ३ + क्रियायें २५ = कुल भेद ४२.

अनादि काल से यह जीव संसार सागर में परिभ्रमण कर रहा है उसका मुख्य कारण आश्रव है । सतत उसकी आत्मा में कर्मो का (शुभ या अशुभ) आगमन चालू ही है । इस आश्रव का प्रथम कारण इंद्रिया हैं । जीव जिस भी गति में जाये उसे एक से पाँच इंद्रिया प्राप्त होती हैं । पाँच इंद्रियों के तेवीस विषय हैं । इन विषयों की प्राप्ति में जीव अनुकुलता में राग करता है, उसे सुख मानता है । प्रतिकुलता में द्वेष करता है, उसमें दुःख मानता है । जिससे कर्मो का प्रवाह चालू रहता है ।

कष याने संसार और आय याने लाभ । जिससे संसार का लाभ प्राप्त होता है वो कषाय । ये कषाय मुख्य क्रोध, मान, माया, लोभ रुप चार प्रकार से हैं । अनंतानुबंधी भेदो के द्वारा वह १६ प्रकार से है ये भी आश्रव के कारण हैं ।

हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रम्ह और परिग्रह इनका त्याग ये व्रत हैं । इनका अत्याग वो अव्रत है । उससे भी कर्मो का आगमन होता है वो आश्रव है ।

जहाँ शरीर है वहाँ जाति व गति के अनुसार मन,वचन, कायारुपी योग है । जहाँ मन,वचन,काया है वहाँ उनका व्यवहार और प्रवृत्ति है उससे भी शुभ अशुभ कर्मो का आगमन होता है, वो भी आश्रव है ।

जिस व्यापार से आत्मा शुभाशुभ कर्मो को ग्रहण करता है, वह क्रिया है और वो भी आश्रव रुप ही है।

पच्चीस क्रियायें

काइअ अहिगरणीया, पाउसिया पारितावणी किरिआ ।
पाणाई वायारंभिय, परिग्गहिया मायावत्ती य ।।२२।।

आश्रव तत्व के अन्तर्गत २५ क्रियायें बताई गई हैं जो संक्षप में इस प्रकार हैं -

१) कायिकी क्रिया : देखे, प्रमार्जे वगैर अयतना पूर्वक शरीर का व्यापार अथवा हलन,चलन वो कायिकी क्रिया है । जैसे अयतना से उठना, बैठना, सोना वगैरह ।

२) अधिकरणिकी क्रिया : जीव नाशक वस्तु या प्रवृत्ति वो अधिकरण । संसार के व्यवहार में अधिकरण के द्वारा जीवो की हिंसा करना वो अधिकरणिकी क्रिया हैं । जैसे - चक्की, छुरी, चाकु, विद्युत साधन, मुसल वगैरह का उपयोग ।

३) प्राव्देषिकी क्रिया : जीव, अजीव के प्रति द्वेष करना, द्वेष के विचार करना वो प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है । जैसे - प्रतिकुल सामग्री, प्रतिकुल बननेवाले व्यक्ति के प्रति का व्यवहार ।

४) परितापनिकी क्रिया : स्व या पर को परिताप, पीडा हो ऐसा व्यवहार या क्रोधादि क्रिया वो परितापनिकी क्रिया कहलाती है ।

५) प्राणातिपातिकी क्रिया : एकेंद्रिय से लेकर पंचेंनद्रिय तक के जीवों के प्राणों का अतिपात करना (विनाश) वो प्राणातिपातिकी क्रिया है ।

६) आरंभिकी क्रिया - खेती, मील, फेक्टरी वगैरह आरंभ,समारंभ से जो क्रिया लगे वो आरंभिकी क्रिया है ।

७) परिग्रहिकी क्रिया : धन,धान्यादि नव प्रकार के परिग्रह को प्राप्त करनें में तथा उसपर ममत्व या आसक्तिभाव रखने से जो क्रिया लगे वो परिग्रहिकी क्रिया है ।

८) मायाप्रत्ययिकी क्रिया - छल, कपट करके दूसरों को ठगना ये मायाप्रत्ययी की क्रिया है ।

मिच्छा दंसणवत्ती, अपचख्खाण दिट्ठी पुट्ठीय ।
पाडुच्चिय सामंतो, वणीअ नेसत्थि साहत्थी ।। २३।।

तथा मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, स्पृष्टिकी (पृष्टिकी अथवा प्राश्निकी क्रिया) प्रातित्यकी, सामन्तोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी (अथवा नैसृष्टिकी) और स्वहस्तिकी क्रिया ।

९) मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया - जिन,वचन के उपर अश्रद्धा करने से अथवा जिनवचन के विपरीत प्ररुपणा करने से जो क्रिया लगे वो मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया है ।

१०) अप्रत्याख्यानिकी क्रिया - पच्चखाण न करने से, अविरति के कारण जो सर्ववस्तु की क्रिया लगे वो अप्रत्याख्यानिकी क्रिया है ।

११) दृष्टिकी क्रिया - अच्छे या खराब, अनुकुल या प्रतिकुल पदार्थो पर राग द्वेष युक्त दृष्टि करने से अथवा कौतुक से वरघोडा, सरकस या नाटक वगैरह देखने से जो क्रिया लगे वे दृष्टिकी क्रिया है ।

१२) स्पृष्टिकी क्रिया - राग के वश से पुरुष, स्त्री, गाय, बैल, वस्त्र प्रमुख सुकोमल वस्तु के स्पर्श करने से जो क्रिया लगे वो स्पृष्टिकी क्रिया है ।

१३) प्रातित्यकी क्रिया - दुसरों के घर हाथी, घोडा, गोकुल, वस्त्राभुषण आदि रिध्दी-सिध्दी देखकर राग,द्वेष करके कर्म बंधन कराये वो प्रातित्यकी क्रिया है ।

१४) सामंतोपनिपातिकी क्रिया : स्वयं का महल, रिद्धि-सिद्धि वस्त्र-आभुषण वैभव देखकर अन्य प्रशंसा करें उसे सुनकर खुश होना अथवा, दूध, दही, घी, तेल के बर्तन खुले रखने से त्रस जीव उस में आकर गिरें और तडपकर मरें उससे जो क्रिया लगे वो सामंतोपनिपातिकी क्रिया है ।

१५) (नैसृष्टिकी) नैशस्त्रिकी क्रिया - राजा की आज्ञा लेकर दूसरों के पास से शस्त्रादि बनवाना,अथवा परोपदेशित पाप में बहुत समय तक प्रवृत रहना और उस पापकी भाव से अनुमोदन करना वो नैशस्त्रिकी अथवा नैसृष्टिकी क्रिया है ।

१६) स्वहस्तिकी क्रिया - स्वयंके हाथोंसे ही जीवादिक का घात करना वो स्वहस्तिकी क्रिया है ।

आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंव पच्चइआ ।
अन्नपओग समुदाण, पिज्जदोसेरिआ वहिआ ।।२४।।

आज्ञापनिकी, वैदारणिकी, अनाभोगिकी, अनवकांक्षाप्रत्ययिकी और दूसरी प्रायोगिकी सामुदानिकी, प्रेमिकी, द्वेषिकी तथा इर्यापथिकी क्रिया ।।२४।।

१७) आज्ञापनिकी क्रिया - अरिहंत प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन करके दूसरों को आज्ञा देकर पापकारी क्रियायें करवाने से जो क्रिया लगे वो आज्ञापनिकी क्रिया है ।

१८) विदारणिकी क्रिया : सचित्त (फलादि), अचित (मूर्ति, फोटो) वस्तु को तोडने, फोडने से (विदारना) अथवा किसी के अप्रकाशित गलत आचरण को प्रकाशित करने से (गालीयां, कलंक देने से) जो क्रिया लगे वो विदारणिकी क्रिया है ।

१९) अनाभोगिकी क्रिया - आभोग याने उपयोग अनाभोग याने उपयोग शुन्य । उपयोग रहित कार्य करने से जो क्रिया लगे वो अनाभोगिकी क्रिया है ।

२०) अनवकांक्षा प्रत्यायिकी क्रिया - स्वयं की या अन्य के हित की आकांक्षा, अपेक्षा करना वो अवकांक्षा उससे विपरीत वह अनवकांक्षा, प्रत्ययिकी याने कारण, अनवकांक्षा जिसका कारण है वो याने स्व या पर के हित का विचार करे बगैर आलोक-परलोक विरुध्द आचरण करना वह अनवकांक्षा प्रत्ययिकी क्रिया है ।

२१) प्रायोगिकी क्रिया - मन, वचन, काया के अशुभ, धर्मविरुद्ध व्यापार के द्वारा जो क्रिया लगे वो प्रायोगिकी क्रिया है ।

२२) सामुदानिकी क्रिया - जिससे विषय ग्रहण करें वो समादान इंद्रिय है । समादान का अर्थ कर्म का संग्रह भी होता है । आठों आठ कर्म के समुह को ग्रहण करने वाली क्रिया वो सामुदानिकी क्रिया है ।

२३) प्रेमप्रत्ययिकी क्रिया - माया या लोभ के वश स्वयं प्रेम (राग) करने से अथवा दूसरों को प्रेम (मोह) उत्पन्न हो ऐसे वचन बोलने से अथवा प्रवृत्ति करने से जो क्रिया लगे वो प्रेम प्रत्ययिकी क्रिया है ।

२४) द्वेषिकी क्रिया - क्रोध या मान के वश होकर द्वेष करने से या दूसरों को द्वेष उत्पन्न हो ऐसे वचन बोलने से या प्रवृत्ति करने से जो क्रिया लगे वो द्वेषिकी क्रिया ।

२५) इर्यापथिकी क्रिया - इर्या याने गमनागमन, पथ याने मार्ग, कर्मबंध के दूसरे निमित्त की गैरहाजरी में केवल योग द्वारा होती गमनागमन की क्रिया वो इर्यापथिकी क्रिया है । मात्र केवली भगवंत को यह क्रिया लगती है ।

तीर्थंकरो की जीवन यात्रा

अचल गच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणसागरसूरि म.सा.

श्री शांतिनाथ प्रभु :-

बारह भवों मे से प्रथम भव में जंबुद्वीप के भरत में रत्नपुरी में श्रीषेण नामक राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त हुआ । सम्यक्त्वसहित बारह व्रत की आराधना की । दूसरे भव में युगालिया हुए । तिसरे भव में प्रथम देवलोक में देव हुए । चौथे भव में वैताढय के उपर रथनुपूर चक्रवाल नगर में अमितेज नामक विद्याधर चक्रवर्ती राजा हुए । उन्होने एकबार 'अचल' केवली को मैं भव्य हूँ या अभव्य ऐसी पृच्छा की । केवली भगवंत ने कहां ''तुम नौवे भव में जंबुद्वीप के भरत में सोलहवे शांतिनाथ नामक तीर्थंकर बनोगे'' अंत में संयम स्वीकार कर चारित्र पालन किया । पाँचवे भव में दसवे देवलोक में देव हुए । छठवे भव में महाविदेह में अपाराजित नामक बलदेव हुए, वहाँ उन्होंने सोलह हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । सातवे भव में बारहवें देवलोक में देव हुए । आठवें भवमें जंबु महाविदेह में वज्रायुध चक्रवर्ती हुए । अंत में उन्होंने चार हजार रानियाँ, सातसो पुत्र और चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । अच्छी तरह संयम पालन किया और नौवे भव में तीसरे ग्रेवैयक में देव हुए । दसवे भव में जंबू महाविदेह में मेघरथ नामक राजा हुए । अत्यंत धर्मनिष्ठ ऐसे उस राजा की ईशानेन्द्र ने अपनी सभामें प्रशंसा की। उसे सहन न कर पाने वाले एक देव ने कबूतर एवं बाज पक्षी का रुप बनाया । कबूतर ने घायल रुप में राजा का शरण लिया । तब बाज ने राजा के पास आकर अपने भक्ष्य को सौंप देने का आग्रह किया । राजा ने कबूतर देने की ना कही, शरणागत का रक्षण करना अपना कर्तव्य बताया, और उसके वजन जितना अपना मांस काटकर तराजू में रखते गये । पर देवमाया से कबूतर का वजन बढता ही रहा । अतः आखिरकार खुद ही तराजू में बैठ गये, यह देख देव रीझ गया, क्षमा मागी और इशानेन्द्र ने की हुई प्रशंसा कह कर खुद भी राजा की प्रशंसा कर चला गया । उस मेघरथ राजा ने भाई दृढरथ, सात सौ पुत्र और चार हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । बीस स्थानक की आराधना की और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया, फिर सिंह विक्रीडीत तप किया, लाख पूर्व तक दीक्षा पाल अनशन कर ग्यारहवे भव में सर्वार्थसिद्ध में देव हुए । वहाँ से च्यवकर हस्तिनापुर में विश्वसेन राजा की रानी अचिरादेवी के उदर में चौद स्वप्न सूचित श्रावण वद सातम को आये । उनके प्रभाव से देश में हुई मरकी शांत हुई अतः वैशाख वदि तेरस को प्रभु जन्मे और उनका नाम शांतिकुमार रखा गया ।

मृग लांछनवाले, सुवर्ण वर्णवाले, चालीस धनुष्य की उंचाईवाले प्रभु पच्चीस हजार वर्ष कुमार अवस्था में बिताकर, पच्चीस हजार वर्ष मांडलिक राजापने और पच्चीस हजार वर्ष चक्रवर्तीपने में रहे । सांवत्सरिक दान देकर एक हजार राजाओं के साथ वैशाख वदि चौदस को दीक्षा ली ।

एक वर्ष छद्मस्थ रहे, पौष सुदी नवमी के दिन केवलज्ञान पाये । अनेक भव्यात्माओं को तिराकर पच्चीस हजार वर्ष चारित्र का पालन किया । संपूर्ण एक लाख वर्ष का आयुष्य भोगा । सम्मेतशिखर पर नौसौ मुनियों के साथ एक माह का अनशन कर वैशाख वदि तेरस को मोक्ष गये प्रभुके चक्रायुध आदि छत्तीस गणधरों के साथ बांसठ हजार साधु, सुमति आदि ईकसठ हजार छः सौ साध्वियाँ दो लाख नब्बे हजार श्रावक और तीन लाख तिरानवे हजार श्राविकाएं इतना परिवार था । शासन रक्षक गरुड यक्ष और निर्वाणी यक्षिणी थे । प्रभु स्वयं पांचवे चक्रवर्ती थे ।

श्री कुंथुनाथ प्रभु :-

पहले के तीसरे भव में जंबूद्वीप में पूर्व महाविदेह में आवर्त विजय के खड गी नगर में सिंहवर नामक राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा लेकर बीसस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म बांधा, वहाँ से सर्वार्थसिद्ध विमान में देव हुए । वहाँ से हस्तिनापुर में

शूरराजाकी श्रीदेवी रानी के उदर में आषाढ वदि नवमी को चौद स्वप्न सूचित च्यवन हुआ । और चैत्र वदि चौदस को जन्मे । बकरे के लांछनवाले, सुवर्ण कान्तिवाले एवं पैंतीस धनुष्य की उंचाईवाले, प्रभु तेईस हजार साढेसातसौ वर्ष कुमार अवस्था में उतने ही वर्ष मांडलिक राजापने में और उतने ही वर्ष चक्रवर्तीपने में रहे । सांवत्सरिक दान देकर चैत्र वदि पंचमी को एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा लेकर सोलह वर्ष छद्मस्थ रहे । हस्तिनापुर में चैत्र सुदि तीज को केवलज्ञान हुआ । अनेक भव्यात्माओं को तिराया, तेईस हजार साढेसातसौ वर्ष दीक्षा पाली । पंचानवे हजार वर्ष संपूर्ण आयुष्य भोगा । एक हजार मुनियों के साथ सम्मेतशिखर आकर एक माह का अनशन कर चैत्र वदि एकम को मोक्ष सिधारे । प्रभुको स्वयंभू आदि पैंतीस गणधरों के साथ साठ हजार साधु, दामिनी आदि साठ हजार छः सौ साध्वीयाँ, एक लाख उन्यास्सी हजार श्रावक और तीनलाख इक्यासी हजार श्राविकाअें इतना परिवार था । शासन रक्षक गंधर्व यक्ष और बलादेवी यक्षिणी थे । प्रभु स्वयं छठवे चक्रवर्ती थे ।

श्री अरनाथ प्रभु :-

पूर्व के तीसरे भव में इस जंबुद्वीप में पूर्व महाविदेह में वत्स विजय में सुसीमा नगरी में धनपति राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त किया, दीक्षा लेकर बीसस्थानक की आराधना कर तीर्थंकर नामकर्म बाँधा । तत्पश्चात नौवे ग्रेवैयक में देव बने, वहाँ से च्यवकर हस्तिनापुर नगर में सुदर्शन राजाकी महादेवी राणी के उदर में अगहन (मार्गशिर्ष) सुदि बीज को चौदह स्वप्न सूचित आये । मागसर सुदी दशम को जन्मे । नंदावर्त लंछन, सुवर्णकांति और तीस धनुष्य की उंचाईवाले थे । प्रभु इक्कीस हजार वर्ष कुमार अवस्था में, इक्कीस हजार वर्ष मांडलिकपने रहे । इक्कीस हजार वर्ष चक्रवर्ती रहे । सांवत्सरिक दान देकर एक हजार राजाओं के साथ मागसर सुदी एकादशी को दीक्षा ली, तीन साल छद्मस्थ रहे । कार्तिक सुदी बारस को हस्तिनापुर में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई । अनेक भव्यात्माओं को तिराकर ईक्कीस हजार वर्ष दीक्षा पाली, संपूर्ण आयुष्य चौरासी हजार वर्ष भोगा । सम्मेतशिखर पर एक हजार मुनियों के साथ एक माह का अनशन कर मागसर सुदी दसम को मोक्ष सिधारे । प्रभुजी के कुंभ आदि तैंतीस गणधरों के साथ पचास हजार साधु, साठ हजार साध्वियाँ, एक लाख चोरासी हजार श्रावक, और तीन लाख बहत्तर हजार श्राविकाअें इतना परिवार था । शासनरक्षक षण्मुख यक्ष और धारीनी यक्षिणी थे । प्रभुजी खुद सातवे चक्रवर्ती थे । उनके शासन में छठवे प्रतिवासुदेव बली, वासुदेव पुरुष पुंडरिक और आनंद नामक बलदेव हुए । तथा आठवे चक्रवर्ती सुभूम हुए, सातवे प्रल्हाद प्रतिवासुदेव, दत्त वासुदेव एंव नंदन बलदेव हुए ।

श्री मल्लीनाथ प्रभु :-

पूर्व के तीसरे भव में इस जंबुद्वीप के अपर विदेह में सलिलावती विजय में वीतशोका नगरी में महाबल राजा थे । वहाँ सम्यक्त्व पाकर छः मित्र राजाओं के साथ दीक्षा ली, बीस स्थानक तप की उपासना कर तीर्थंकर नाम कर्म बाँधा । फिर वैजयंत में देव हुए । वहाँ से मिथिला नगरी में कुंभराजा की प्रभावती रानी के उदर में फागुन सुदी चौथ को चौदह स्वप्न सूचित च्यवन हुआ । मागसर सुदि एकादशी को जन्म हुआ । कुंभ लांछनवाले, नीलकांतिवाले और पच्चीस धनुष्य उंचाईवाले प्रभु एक सौ वर्ष कुमारीपने में रहे, अभ्यंतर परिवार योग्य तीन सौ स्त्रियों के साथ और बाह्य परिवार योग्य एक हजार पुरुषों के साथ मागसर सुदी एकादशी के दिन दीक्षा लेकर उसी दिन केवलज्ञान को प्राप्त हुए । अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध देकर चौवन हजार नौ सौ वर्ष दीक्षा का पालन किया, पचपन हजार वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोगा । पाँचसौ साध्वीयाँ एवं पाँचसौ मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पर एक माह का अनशन कर फागुन सुदी बारस को निर्वाण पाये । प्रभु को भिषक आदि अठ्ठाइस गणधरों के साथ चालीस

हजार साधु, बंधुमति आदि पचपनहजार साध्वियाँ, एक लाख तिरासी हजार श्रावक और तीन लाख सत्तर हजार श्राविकाअें आदि प्रभु का परिवार था । शासनरक्षक देव कुबेर यक्ष और वैरोट्या यक्षिणी थे ।

श्री मुनिसुव्रत प्रभु

पूर्व के तीसरे भव में अपरमहाविदेह में भरत विजय की चंपापुरी के सूरश्रेष्ठ राजा थे । सम्यक्त्व पाकर दीक्षा ली । बीसस्थानक तप आराधा और तीर्थंकर नामकर्म बाँधा । वहाँसे प्राणत देवलोकसे च्यवकर राजगृही नगरीके सुमित्र राजा की पद्मावती रानी के उदर में श्रावण सुदी पुनम को चौदहस्वप्न सूचित आये । वैशाख वदी अष्टमी को जन्मे । श्यामकांतिवाले, कूर्म (कछुअे) के लाँछनवाले, बीस धनुष्य की उंचाईवाले प्रभु साढेसात हजार वर्ष कुमारपने में रहे । पंद्रह हजार वर्ष राज्य का पालन किया । सांवत्सरिक दान देकर एक हजार राजाओं के साथ फागुन सुदी बारस को दीक्षा ली । ग्यारहमाह छद्मस्थ में रहे । महा वद बारस के दिन राजगृही में केवलज्ञान पाया । अनेक भव्य आत्माओं को तिराकर अंत में सम्मेतशिखर पर एक हजार मुनियों के साथ एक माह का अनशन कर साढे सात हजार वर्ष दीक्षा पालन कर संपूर्ण तीस हजार वर्ष का आयुष्य भोगा । ज्येष्ठ वदी नवमी के दिन प्रभु मोक्ष सिधारे । इन्द्र आदि अठ्ठारह गणधर थे, तीस हजार साधु, पुष्पवती प्रमुख पच्चास हजार साध्वियाँ, एक लाख बहत्तर हजार श्रावक और तीन लाख पचास हजार श्राविकाअें इतना परिवार था । प्रभु के शासन में नौवे महापद्म चक्रवर्ती हुए । एंव आठवे प्रतिवासुदेव रावण, वासुदेव लक्ष्मण एवं बलदेव राम हुए । शासनरक्षक वरुणदेव और नरदत्ता यक्षिणी थे ।

श्री नमिनाथ प्रभु

पूर्व के तीसरे भव में इस जंबुद्वीप के महाविदेह के भरत विजय के कौशंबी नगरी में सिध्दार्थ नामक राजा थे, वहाँ सम्यक्त्व पाकर दीक्षा ली । बीसस्थानक तप की आराधना की और तीर्थंकर नामकर्म बाँधा । वहाँ से अपारजित विमान में देव हुए । वहाँ से मिथिला नगरी में विजय राजा की विप्रा रानी के उदर में च्यवन हुआ । चौदह स्वप्न सूचित च्यवन कल्याणक आसो सुद पूनम को हुआ और आषाढ वदी आठम को जन्म हुआ । सुवर्णकांति, नीलकमल लंछन और पंद्रह धनुष की काया एवं संपूर्ण दसहजार वर्ष आयुष्य भोगा । कुमार अवस्था ढाई हजार साल की थी । पांच हजार वर्ष राज्य भोगा । अंत में सांवत्सरिक दान देकर, जेष्ठ वदि नवमी के दिन एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली । नौ माह छद्मस्थ रहे । मागसर शुक्ल एकादशी को मिथिला में केवलज्ञान पाया । अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोधित कर ढाई हजार साल दीक्षा का पालन किया । एक हजार मुनियों के साथ सम्मेतशिखर पर एक माह का अनशन कर चैत्र वदी दसमी के दिन मोक्ष सिधारे । प्रभु को कुंभ आदि सत्तर गणधरों के साथ बीस हजार साधु-अनिला आदि इकतालीस हजार साध्वीयाँ, एकलाख सत्तर हजार श्रावक और तीन लाख अडतालीस हजार श्राविकाअें इतना परिवार था ।

प्रभु के शासन में दसवे हरिषेण एवं ग्यारहवे जय नामक चक्रवती हुए । नमिनाथ प्रभु मोक्ष गये उसे पांचलाख चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष हुए तब पुस्तकें लिखवायी गयी हैं।

इन प्रभु के रक्षक भृकुटी यक्ष और गांधारी यक्षिणी थे ।